धर्म क्या है, क्या नहीं?

मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो अत्यन्त दयावान और बड़ा कृपाशील है।"

प्राक्कथन

धर्म क्या है? धर्म की व्याख्या में लोगों में बड़ा मत-भेद पाया जाता है। यह मत-भेद मौलिक धारणाओं तक में मौजूद है। परिणामस्वरूप इस विषय में भी विभेद पाया जाता है कि धर्म का जीवन से क्या सम्बन्ध है। सच्चा धर्म किसे कहेंगे, यह जानने की अभिलाषा प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति को होनी चाहिए।

सद्भावना के नाम से एक वर्ग सभी धर्मों को सत्य कहता है। जबकि यह विचार कदापि सही नहीं हो सकता। मौलिक शिक्षाओं और धारणाओं तक में विभेद होने के बाद भी समान रूप से सत्य और कल्याणकारी समझना बुद्धिसंगत बात नहीं हो सकती। जो चीज़ बुद्धि और विवेक के विपरीत हो उसकी पुष्टि स्वयं अधर्म है। फिर यह तथ्य हमारे सामने रहना चाहिए कि सभी धर्मों का आदर करना अलग चीज़ है और सबको सत्य समझना अलग।

इस पुस्तक में विभिन्न प्रसिद्ध धर्मों का परिचय कराते हुए धर्म के गूढ़ विषय पर विचार किया गया है और अन्त में यह दर्शाने की चेष्टा की गई है कि इस सम्बन्ध में इस्लाम हमारा क्या मार्गदर्शन करता है।

धर्म पर ही जीवन की सफलता निर्भर करती है। भौतिकवाद मनुष्य को समझने में नितांत असफल है। मनुष्य केवल भौतिक शरीर नहीं है। शरीर के अतिरिक्त वह कुछ और भी है। शारीरिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त उसकी कुछ और भी आवश्यकताएँ हैं। उन आवश्यकताओं की उपेक्षा या उनसे अनभिज्ञ रहना जीवन की अवहेलना है।

हम अपने पाठकों से इसकी आशा करते हैं कि धर्म और मानव-जीवन के विषय में जो वार्ता की गई है, वे उसपर गंभीरतापूर्वक विचार करेंगे। ईश्वर हम सबका सहायक हो!

विनीत

मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

धर्म क्या है, क्या नहीं?

भौतिक जगत में अलौकिक की तलाश हमेशा रही है। साधारणतया जीवन के अलौकिक तत्व को धर्म की विकशेषता समझा गया है। हमारे जीवन का बड़ा और महत्त्वपूर्ण हिस्सा परोक्ष (Unseen) से सम्बन्ध रखता है। उदाहरणार्थ क्या जीवन और जगत् का कोई स्रष्टा और नियंता अर्थात् ईश्वर है या नहीं? क्या जगत् का संचालन अपने-आप हो रहा है या जगत् और जीवन का आविर्भाव किसी योजक की योजना के अन्तर्गत हुआ है? क्या जगत् अपने-आपमें अपना लक्ष्य है? इसके पीछे किसी ज्ञात या अज्ञात सत्ता का इरादा या संकल्प काम नहीं कर रहा है और न इसका कोई अलौकिक एंव नैतिक लक्ष्य है जिसे दृष्टि में रखना हमारे लिए ज़रूरी हो?

क्या खाना-पीना और अपनी नस्ल को बाक़ी रखना ही जीवन है, यदि इसे मान लिया जाए तो पशुओं और मानवों में कोई मौलिक भेद शेष नहीं रहता। फिर तो मनुष्य का जीवन पशु-स्तर ही का होगा। क्या मनुष्य मात्र शरीर ही है या शरीर के अतिरिक्त उसका वास्तविक अस्तित्व कुछ और है, जो शरीर के त्यागने के पश्चात् भी शेष रहता है? यदि अमरता उसका विशिष्ट गुण है, तो जीवन का उद्देश्य और लक्ष्य भी मात्र सामयिक (Temporary) नहीं हो सकता और न मनुष्य को पशुओं की कोटि में रखा जा सकता है। पाशविक गुणों और पाशविक आवश्यकताओं के अतिरिक्त उसकी कोई अभौतिक और अलौकिक आवश्यकता भी होगी।

एक प्रश्न यह भी है कि धर्म का सम्बन्ध मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन से ही है या धर्म मानव के वैचारिक, नैतिक, सामाजिक और राजनैतिक आदि अन्य पहलुओं से भी उसका सम्बन्ध है।

धर्म वास्तव में संस्कृत भाषा का शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है। धृ धातु में म प्रत्यय लगाने से धर्म शब्द निष्पन्न होता है। धर्म का अर्थ है

ग्रहण करना, पकड़ना, धारण करना, आधार प्रस्तुत करना, गिरने न देना और दिव्यता प्रदान करना आदि। धर्म का सामान्य अर्थ मज़हब, दीन (Religion) है। जैमिनी के अनुसार 'चेतना लक्षणो धर्मः' अर्थात् प्रेरणा देना धर्म का लक्षण है।

इस प्रकार धर्म का अर्थ अत्यन्त व्यापक है। दीन (धर्म) क़ुरआन में कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, उदाहरणार्थ मज़हब, शरीअत (धर्म-विधान) आज्ञापालन और देश का क़ानून आदि।

'दीन' शब्द अरबी भाषा में भी कई अर्थों में प्रयोग किया जाता है। (1) सत्ता, शासन, अधिकार (2) आज्ञापालन, अनुसरण, बन्दगी (3) क़ानून, शरीअत, जीवन-व्यवस्था, रीति, तरीक़ा (4) बदला संप्रेक्षण, कर्म-फल। क़ुरआन में इन्हीं अर्थों में से किसी के लिए दीन शब्द प्रयुक्त हुआ है। प्रसंग के अन्तर्गत इसका अर्थ नियत किया जाता है।

धर्म अपने अर्थ के अनुसार वही है जिसे व्यक्ति और समाज धारण करे। उसे पतित से बचाए। मनुष्य को उच्चता और दिव्यता प्रदान करे। पूर्ण और सत्य धर्म वही है। सत्य को ग्रहण करने के बदले यदि कोई व्यक्ति या समाज असत्य का पालन करता है, तो यह अन्याय और अधर्म होगा इसे धर्म कदापि नहीं कहेंगे।

लेकिन जीवन का वास्तविक अभिप्राय क्या है, जिसे दृष्टि में रखते हुए जीवन व्यतीत किया जाए? जीवन की कौन-सी शैली है जिसे मनुष्य की पूर्णता और दिव्यता का लक्षण कहा जा सके? इसका निर्णय कौन करेगा। मनुष्य की अपनी योग्यता, क्षमता और ज्ञान सीमित है। बहुत-सी बातों से विशेष रूप से परोक्ष के बारे में वह अनभिज्ञ है। यदि वह परोक्ष (Unseen) के विषय में अनुमान और अटकल से काम लेता है, तो यह ख़तरनाक बात होगी। अनुमान या अटकल तो अटकल ही है, वह निश्शंक सत्य का बदल नहीं हो सकता। केवल अटकल और अनुमान के आधार पर पूर्ण जीवन-दर्शन का सम्पादन सम्भव नहीं। यहाँ अनुमान नहीं पूर्ण विश्वास अभीष्ट है। खोखले कगर पर धार्मिक भवन निर्माण नहीं किया जा सकता।

धर्म तो वह है जो हमें हमारे वास्तविक लक्ष्य से अवगत कराए। जो जीवन के रहस्य को हमपर उदघाटित कर सके। जो जीवन के मार्ग अर्थात् उसकी सुन्दरतम शैली की शिक्षा दे। जिसकी शिक्षाओं में सामंजस्य हो। किसी प्रकार का विरोधाभास उसमें न पाया जाता हो। जो निराशा की नहीं आशा की शिक्षा दे। जो जीवन को सुन्दर, सरल और मधुर बनाए।

मानव का धर्म एक ही हो सकता है, कई नहीं। क्योंकि सत्य एक होता है। सत्य कई नहीं हो सकते। कई परस्पर विरोधी धर्मों को स्वीकार करना और उन सबको सत्य कहना सबसे बड़ा झूठ और अधर्म है।

धर्म जीवन के रहस्यों का प्रबोध है, सत्य का उद्घाटन है और मूल सत्य एक होता है, कई और विभिन्न नहीं। अब हम कुछ विशेष धर्मों के अध्ययन से यह जानना चाहेंगे कि उनकी मौलिक धारणा क्या है, जिसके अन्तर्गत वे अपनी शिक्षाओं का संयोजन करते हैं और यह जानने की कोशिश करेंगे कि उनके ज्ञान का मौलिक स्रोत क्या है?

हिन्दू धर्म

हिन्दू धर्म के अध्ययन से मालूम होता है कि उसमें धर्म और धार्मिकता से अधिक दर्शनों और मत-मतांतरों का बाहुल्य है। दर्शनों में विभेद का होना स्वाभाविक है। विरोधाभास भी उसका स्वभाव है। यह विरोधाभास हिन्दू धर्म में स्पष्टतः दिखाई देता है। हिन्दू धर्म की कोई एक निश्चित परिभाषा नहीं की जा सकती। इसी कारण इस सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद पाया जाता है। एक ईश्वर की धारणा बहुदेववाद के कारण संदिग्ध होकर रह गई है। एकेश्वरवाद यहाँ त्रिदेववाद से आरोपित दिखाई देता है। यहाँ शिव के पुजारी भी हैं और विष्णु के उपासक भी। इसके अतिरिक्त औरों के प्रति भी आराध्य धारणाएँ पाई जाती हैं। इस कारण हिन्दू धर्म का एकेश्वरवाद खंडित दिखाई देता है।

कुछ जानी-पहचानी भलाइयाँ और सुकर्म या पुण्य-कार्य ऐसे हैं जो सामान्य तथा सभी को स्वीकार हैं। जैसे सत्य बोलना, किसी को धोखा न देना, अत्याचार न करना, सबका हित चाहना, और अहंकार से बचना इत्यादि। ये शील स्वभावगत स्वतः हर एक को मान्य है। यहाँ किसी धर्म की विशेषता नहीं। प्रश्न यह है कि ईश्वर है, तो उसकी इच्छा क्या है? वह हमसे क्या चाहता है? उसकी प्रसन्नता प्राप्त हो, इसके लिए उसकी शिक्षा या आदेश क्या है? मानव के लिए उसका वास्तविक सन्देश क्या है? और यह सन्देश कैसे ज्ञात किया जा सकता है? अपनी किस योजना के अन्तर्गत उसने हमें धरती में पैदा किया है? हमारे लिए ज्ञान का मूल स्रोत क्या है? इस सम्बन्ध में निराशा के अतिरिक्त स्पष्ट ज्ञान प्रदान करने में यह धर्म असफल दिखाई देता है।

हिन्दू धर्म मुक्ति को जीवन का मूल लक्ष्य बताता है। किन्तु मुक्ति का अर्थ क्या है इस विषय में जो कुछ कहा जाता है वह भ्रमयुक्त है और

मानव-स्वभाव और मनुष्य की प्रकृति के अनुकूल प्रतीत नहीं होता।

पुनर्जन्म की धारणा भारतीय धर्मों की एक विशिष्ट धारणा है। किन्तु इसी के साथ वेदों में स्वर्ग और नरक की जो धारणा पाई जाती है और जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन वेदों में मिलता है, वह पुनर्जन्म की धारणा के बिलकुल विपरीत है।

पुनर्जन्म की धारणा के विषय में भी मतैक्य नहीं पाया जाता। हिन्दू धर्म में पुनर्जन्म का अर्थ यह है कि दुनिया में बार-बार जन्म लेना। जन्मों का यह सिलसिला तभी रुकेगा जब प्राणी मुक्त हो जाएगा। अन्यथा जन्म-मरण का सिलसिला निरन्तर चलता रहेगा।

कहते हैं कि सच्ची कामना के बिना अर्थ और काम का उचित उपयोग सम्भव नहीं, अतः अर्थ, काम और मोक्ष (मुक्ति) के मध्य सामंजस्य धर्म के द्वारा सम्भव होता है। धर्मपूर्वक मोक्ष की साधना से अर्थ और काम (इच्छाओं) की उचित व्यवस्था सम्भव है। और धर्मपूर्वक अर्थ और काम को ग्रहण करने से मोक्ष सुलभ हो जाता है। मोक्ष अर्थ और काम से ऊपर की दशा है।

कहा जाता है कि आत्मा का किसी शरीर से मिलना जन्म है और शरीर से उसका विलग हो जाना मृत्यु है। इस शरीर को त्यागकर आत्मा अपने कर्म के अनुसार दूसरे शरीर में चली जाती है। वह शरीर मनुष्य का भी हो सकता है और पशु और पेड़-पौधे का भी। (कठोपनिषद 2/2/7)

यह पुनर्जन्म की प्रक्रिया उस समय तक चलती रहती है जब तक आत्मा अपने सभी पाप-कर्मों से मुक्त होकर योग के द्वारा ईश्वर का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेती।

उपनिषदों में पुनर्जन्म के विषय में तीन मन्तव्य पाए जाते हैं। छन्दोग्योपनिषद् (5/10/7) में कहा गया है कि जीवों में जो श्रेष्ठ, सुन्दर आचरणवाले होते हैं, वे शीघ्र ही उत्कृष्ट योनि को प्राप्त होते हैं और जो अशुभ अपवित्र आचरणवाले होते हैं वे तत्क्षण ही अशुभ योनि को प्राप्त होते हैं। दूसरे मन्तव्य के अनुसार तपस्वी और महान लोगों की आत्माएँ ईश्वर

का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने पर ब्रह्ममय हो जाती हैं अर्थात् ब्रह्म में मिल जाती हैं। उनका पुनर्जन्म नहीं होता। (श्वेता॰ 3/8, तै॰उ॰ 2/1)

तीसरा मन्तव्य हमें वृहदराण्यकोपनिषद् (अध्याय-4) में मिलता है। वह यह है कि आत्मा किसी योनि में फल भोग नहीं करती, बल्कि शुभ-फलों के कारण ब्रह्मत्व को प्राप्त कर सकती है। यदि उसे कर्म करने की इच्छा होती है, तो वह संसार में पुनर्जन्म लेती है। मुण्डक तथा वृहदराण्यकोपनिषद् में भी एक और बात कही गई है कि पुनर्जन्म के मूल में काम (Desire) है। कर्म तो इच्छा और उसके परिणाम के मध्य की कड़ी मात्र है। बात जो हो लेकिन इतना मानना पड़ता है कि मृत्यु के समय आत्मा भौतिक तत्व, इन्द्रिय शक्ति तथा अन्य शक्ति को सूक्ष्म रूप में वहन करती हुई आवश्यकतानुसार नवीन शरीर का निर्माण कर नवीन जीवन में कर्म-फल का भोग करती है। (देखें दास गुप्ता S.N A History of Indian Philosophy Cambridge University Press Vol. 1 P.P 55-56)

पुनर्जन्म पर विचार करते हुए एक हिन्दू विद्वान उपेन्द्रनाथ झा ने कहा है कि "आत्मा के विषय में यह कहना कि वह मनोदैहिक सारी प्रवृत्तिओं को सूक्ष्म रूप से संग्रहित करती है और नवीन शरीर-निर्माण की सामर्थ्य भी उसे प्राप्त है, यह मात्र कोरा विश्वास है। जब आत्मा इतना कुछ कर सकती है, तो वह क्यों नहीं एक जीवन-काल में कर्म-फल का भुगतान कर लेती!"

कहा जाता है कि आत्मा विकसित हो तो हम ज्ञान से अनभिज्ञ नहीं रह सकते। ज्ञान ही मुक्ति का कारण है, मुक्ति ही जीवन का उद्देश्य है। लेकिन हम कहाँ क़ैद हैं कि इस क़ैद से मुक्त होने को अपना लक्ष्य समझें। मुक्ति का अर्थ भय और ईश्वर के प्रकोप से मुक्त होना भी तो हो सकता है और यह अर्थ अत्यन्त मार्मिक और बुद्धिसंगत भी है। लेकिन भूलकर भी मुक्ति का यह अर्थ नहीं लिया जाता।

इस बात को भुला दिया जाता है कि ईश्वर के प्रति हमारा नैतिक कर्तव्य क्या है? और इस कर्तव्य का निर्वाह किस तरह हो सकता है। हम ईश्वर के ऋणी हैं, उसके उस उपकार की कोई सीमा नहीं जो उसने हमपर और

मानव-जाति पर किया है। फिर उसने हमसे क्या आशा की है? इसका स्पष्टतः उल्लेख नहीं मिलता।

ईश्वर का हमसे कैसा सम्बन्ध है? वह सम्बन्ध मधुर भी है या मात्र क़ानूनी सम्बन्ध है। वह हमारा प्रेम-पात्र भी है या केवल स्रष्टा और जग-निर्माता ही है।

उपनिषदों की धारणा है जैसा कि इससे पहले इसका उल्लेख किया जा चुका है कि ज्ञान ही से मनुष्य को शाश्वत जीवन मिलता है जो हर प्रकार के दुखों और बन्धनों और प्रतिबन्धनों से मुक्त होता है। ज्ञान से ही पुनर्जन्म से छुटकारा मिलता है।

ब्राह्मण-काल में पुनर्जन्म की धारणा हिन्दू धर्म में प्रविष्ट हुई। यह वैदिक धारणा नहीं है। वेदों की धारणा यह है कि मृत्यु के बाद आत्मा शेष रहती है। उसे पुनः दुनिया में आना नहीं होता। उपनिषद् के अनुसार मुक्ति प्राप्त करने का साधन मात्र चेतना है, न कि आस्था और कर्म।

शतपथ ब्राह्मण में पहली बार कहा गया है कि जो लोग धार्मिक रीतियों का पूर्ण रूप से निर्वाह नहीं करते उन्हें मृत्यु के पश्चात् पुनः दुनिया में आना पड़ता है।

बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म में आत्मा को कोई स्थायी अस्तित्व नहीं माना गया है। वह चेतना का प्रवाह मात्र (Stream Of Conciousness) है। बुद्ध ने वास्तविक आत्मा (Real Self) को मात्र भ्रम कहकर केवल व्यावहारिक आत्मा को माना है, जिसमें निरंतर परिवर्तन होता रहता है। इसी लिए उनके आत्म-विचार को अनुभववादी (Impirical) मत कहा गया है।

वेदान्त की दृष्टि में उच्चतम बात मनुष्य के लिए यह है कि मनुष्य की आत्मा व्यापक आत्मन अर्थात् ब्रह्म में लीन हो जाए। लेकिन बौद्ध धर्म में क्योंकि ईश्वर या ब्रह्म और आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है, इसलिए अपनी इच्छाओं और कामनाओं को मिटाना स्वयं जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

बौद्ध धर्म में कर्म और पुनर्जन्म को स्वीकार किया गया है। बुद्धिष्टों की दृष्टि में कोई आत्मा या अस्मिता ऐसी नहीं है जिसका अपना स्वयं का अस्तित्व हो। जो कार्य-कारण की शृंखला से हटकर अपना अस्तित्व रखती हो। पानी के ऊपर लहरें या बुलबुले मात्र वायु के कारण दिखाई देते हैं। जिस प्रकार लहरें नदी से अलग नहीं होतीं उसी प्रकार मनुष्य का जगत् से विलग अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है।

यहाँ प्रश्न यह है कि जब आत्मा का स्वतंत्र और स्थायी अस्तित्व नहीं है, तो जिस आत्मा का आविर्भाव होगा वह नवीन आत्मा होगी। पूर्व आत्मा तो दीपक की तरह बुझ चुकी होगी। अब जो आत्मा भी अस्तित्व में आएगी, वह पूर्व या पहले की आत्मा न होगी। पूर्व आत्मा के कर्म-फल से उसका कोई सम्बन्ध न होगा। यह तर्कसंगत बात नहीं हो सकती कि किसी आत्मा के कर्मों की ज़िम्मेदार किसी अन्य आत्मा को ठहराया जाए।

वैदिक धर्म में भौतिक कामनाओं और इच्छाओं का निषेध नहीं किया गया। वह अभोग का नहीं भोग का धर्म था। स्वर्ग और नरक की धारणा

को स्वीकार किया गया था। अवज्ञाकारी लोगों को नरकाग्नि से डराया गया था।

बौद्ध धर्म में स्वर्ग और नरक के स्थान पर निर्वाण की धारणा प्रस्तुत की गई। अर्थात् दुख और पीड़ा से छुटकारा पाना ही जीवन का मूल उद्देश्य है। हालाँकि मानव-जीवन में पीड़ा और दुख ही नहीं, सुख और आनन्द भी पाया जाता है। दुख और पीड़ा का विशेष कारण तो पाषाण हृदयता, अन्याय और बिगाड़ है जिसका उत्तरदायी स्वयं मनुष्य है।

निर्वाण का अर्थ है ऐसी हालत कि मनुष्य का कोई अस्तित्व शेष न रहे। जैसे दीपक जलते-जलते बुझ जाता है। क्योंकि यह धारणा मानव-प्रकृति के विरुद्ध है, इसलिए बौद्ध मत के अनुयायी इस धारणा को स्वीकार न कर सके।

निर्वाण का अर्थ क्या हो सकता है? इसमें मत-भेद पाया जाता है। पुनर्जन्म से छुटकारा पाने को निर्वाण कहा गया और निवार्ण का यह अर्थ भी लिया जाता है कि हमारी नैतिकता इस प्रकार से विकसित हो जाए कि हमारे अन्दर कोई इच्छा और कामना (Desire) शेष न रहे। इसके लिए कुछ उपाय भी बताए गए हैं जिनमें से एक सम्यक समाधि भी है। हर प्रकार की वृत्तियों का निरोध की दशा ही समाधि है। इस सम्बन्ध में विभिन्न पड़ाओं से गुज़रना पड़ता है। अन्तिम हालत तक पहुँचकर पूर्ण निरोध और पूर्ण आनन्द की दशा पैदा होती है। यही दशा या हालत निर्वाण है।

जीवन और जगत् से संबद्ध मौलिक प्रश्नों के विषय में निराशा के अतिरिक्त बौद्ध मत हमें कुछ नहीं दे पाता।

जैन-धर्म

जैन-धर्म ने तपस्याओं को क़ायम रखा, बल्कि तपस्या को और अधिक बढ़ावा दिया। जैन-धर्म की दृष्टि में पुरुष वास्तव में प्रकृति और उसकी विकृतियों से भिन्न और अलग है। अज्ञान के कारण वह प्रकृति और उसकी विकृतियों (परिवर्तनों) के साथ अपनापन बना लेता है। मोक्ष की अनुभूति इसी दशा में सम्भव है जब पुरुष अपने-आपको प्रकृति से भिन्न समझने लगता है। पुरुष वास्तव में मुक्त ही है। बन्धन प्रतीति मात्र है। जैन-धर्म मोक्ष को चरम लक्ष्य मानता है। जीव के घातीय और अघातीय कर्म नष्ट हो जाएँ। मनुष्य सर्वद्रष्टा और सर्वज्ञ हो जाए।

हर प्रकार के स्वार्थों और इच्छाओं को त्याग देना, स्वार्थपरता से सम्बन्धित कामनाओं से विलग हो जाना, यह जैन-धर्म का सार मालूम होता है।

इस सिलसिले में हम देखते हैं कि योग की विधि की व्याख्या कम या अधिक सभी मतों में की गई है; चाहे वह न्याय वैशेषिक हो, या बौद्ध, जैन मत हो या सांख्य मीमांसा हो या वेदान्त। जैनियों का कहना है कि चेतना आत्मा में निरंतर रहती है। आत्मा भोक्ता भी है कर्ता और ज्ञाता भी। आनन्द उसका स्वभाव है।

मीमांसा में मोक्ष सुख-दुख से परे की हालत है। यह अचेतन अवस्था है। विशिष्ट द्वैत वेदान्त की दृष्टि में मुक्ति का अर्थ ब्रह्म से मिलकर तदाकार हो जाना नहीं, बल्कि ब्रह्म से सादृश्य प्राप्त करना है। शंकर ने मोक्ष को आनन्दावस्था कहा है। वशिष्ट मुनि की दृष्टि में आदमी पवित्र मन से कर्म करे। बस दुनिया से लगाव (Attachment) न हो। फिर राजा हो या निर्धन दोनों भवसागर से पार हो सकते हैं।

पातंजलि के मतानुसार वृत्तियों का निरोध आवश्यक है।

उनका मानना है कि जब चित्त की वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती हैं तो जीवात्मा अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित हो जाती है।

स्वामी दयानन्द के मतानुसार शाश्वत मुक्ति सम्भव नहीं। आत्माएँ लौट-लौटकर संसार में आती हैं। सीमित कर्म द्वारा असीम फल कैसे प्राप्त हो सकता है!

अद्वैतवादियों और जैन-धर्म के माननेवालों की दृष्टि में एक मुक्ति कैवल्य दशा या कैवल्य मुक्ति है। इसमें आत्मा अपने शुद्ध रूप का अनुभव करती है जिसका विकल्प नहीं। यह अनुभव जीवन में भी सम्भव है।

यहूदी धर्म

बनी-इसराईल या यहूदी मूलतः सामी नस्ल से थे। अधिकतर लोगों का विचार है कि इराक़ ही इनका पुरातन देश रहा है। मूसा (अलैहि॰) के विजय होने से पहले भी यहूदी वहाँ थे। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि ये फ़ुरात नदी के तट के वासी थे।

20वीं शताब्दी ई॰ पूर्व में यहूदी इराक़ से शाम या फ़लस्तीन के भू-भागों में फैल गए। फिर ये मिस्र जा पहुँचे। 18वीं शताब्दी ई॰ पूर्व में मिस्र के राज्याधिकारी भी रहे। 16वीं शताब्दी ई॰ पूर्व के मध्य के पश्चात् मिस्रियों के गुलाम हो गए। इस समय इनपर अत्यन्त अत्याचार हुआ। 14वीं शताब्दी ई॰ पूर्व के अन्त में हज़रत मूसा (अलैहि॰) के मार्गदर्शन में वे दासता से मुक्त हो सके। हज़रत मूसा (अलैहि॰) के बाद हज़रत ईसा (अलैहि॰) की अध्यक्षता में फ़लस्तीन पर विजय प्राप्त करने में सफल हुए। इस वंश के दाऊद (अलैहि॰) और सुलैमान (अलैहि॰) जैसे सम्राट हुए। उनके ज़माने में इनका बड़ा प्रताप रहा। हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) के समय में यरुशलम में प्रसिद्ध हैकल का निर्माण हुआ। उनके देहान्त के पश्चात् बनी-इसराईल (यहूदियों) में एकता शेष न रह सकी। इनका राज्य दो भागों में विभक्त हो गया। उत्तरीय हुकूमत इसराईली कहलाती थी। राजधानी समरिया थी। दूसरी हुकूमत की राजधानी थी यरुशलम। यह हुकूमत यहूदा के नाम से वुजूद में आई। पहली हुकूमत अधिक समय तक क़ायम न रह सकी। आशूरियों ने उसे बिलकुल मिटा दिया। यरुशलम की हुकूमत 150 वर्ष तक चली। इसे बाबिल के बादशाह बुख़्ते-नसर ने तबाह कर दिया।

यरुशलम की तबाही के सैंतालिसवें (47वें) साल बाबिल पर ईरानियों का क़ब्ज़ा हो गया। उन्होंने यहूदियों को यरुशलम जाने की इजाज़त दे दी।

सिकन्दर महान के समय तक इसराईलियों को यहाँ सत्ता प्राप्त रही।

इसके पश्चात् इसराईली विभिन्न यूनानी शासकों के अधीन रहे। यूनानियों ने यहूदी धर्म को समाप्त करने की चेष्टा की। इसकी प्रतिक्रिया में यूनानियों के विरुद्ध विद्रोह का आन्दोलन चला। परिणामस्वरूप एक यहूदी हुकूमत क़ायम करने में सफल हो गए। लेकिन शासनाधिकारियों को धर्म से कोई लगाव न था। लोगों का क्रोध बढ़ा। उन्होंने रूमियों से सहायता की याचना की। सहायता करने के बहाने रूमियों ने फ़लस्तीन पर क़ब्ज़ा कर लिया। रूमियों की नीति में उदारता न थी। रूमियों के सत्ताधिकार के पश्चात् यहूदियों पर दीर्घकालीन दासता का सिलसिला आरम्भ हुआ।

ईसाइयों के अत्याचार के कारण यहूदियों में आज़ादी हासिल करने की लगन पैदा हुई। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् यहूदियों पर पुनः अत्याचार और ज़ुल्म होने लगा। उन्हें देशनिकाला और निर्वासन का जीवन व्यतीत करना पड़ा। विशेष रूप से जर्मनी से उन्हें बिलकुल निकाल दिया गया।

मध्य पूर्व के अरब देशों पर अपना प्रभाव और सत्ता स्थापित करने के ध्येय से एक साज़िश के अन्तर्गत फ़लस्तीन में इसराईली हुकूमत क़ायम कर दी गई। यह घटना 1948 ई॰ की है।

धार्मिक स्थिति

आरम्भ में यहूदी एकेश्वरवाद में विश्वास रखते थे। लेकिन निरन्तर गिरावट ने इन्हें सत्य से बहुत दूर कर दिया। ईश्वर ने इस क़ौम पर बड़ा उपकार किया। 1300 ई॰ पूर्व ईश्वर ने हज़रत मूसा (अलैहि॰) जैसा पैग़म्बर भेजा और तौरात जैसी किताब प्रदान की। फ़िरऔन जैसे ज़ालिम सम्राट से इन्हें छुटकारा दिलाया। हज़रत मसीह (अलैहि॰) से पहले प्रतापवान सम्राट हुए, जिन्होंने यरुशलम पर अधिकार प्राप्त किया था। हज़रत दाऊद (अलैहि॰) और हज़रत सुलैमान (अलैहि॰) सम्राट ही नहीं ख़ुदा के पैग़म्बर भी थे। हज़रत दाऊद (अलैहि॰) को ज़बूर जैसी किताब दी गई। इनमें कितने ही पैग़म्बर और नबी आए। लेकिन सत्य-पथ पाकर भी यह क़ौम भटक जाती रही। हज़रत मूसा (अलैहि॰) की क़ौम होने के बावजूद यहूदी या बनी-इसराईल अपने पैग़म्बरों की मौलिक शिक्षाओं से दूर जा पड़े। उन्हें यह भ्रम हुआ कि

वे ईश्वर के प्रिय हैं। उनकी हैसियत ईश्वर के चुने हुए बन्दों की है। उनके विचार में उन्हें यातना दी भी गई तो केवल सांसारिक जीवन में दी जाएगी। निरन्तर आशाओं की पामाली और निराशा के बाद एक नया विचार उनके यहाँ पैदा हुआ। वह यह कि कोई मुक्तिदाता आएगा और आसमानी बादशाहत (राज्य) क़ायम करेगा और सभी क़ौमों को अपने अधीन करने में सफलता प्राप्त करेगा। आसमानी बादशाहत की धारणा जो उनके यहाँ पैदा हुई उसका सम्बन्ध इसी संसार से था।

एक दीर्घकाल तक मिस्र में रहने के कारण मिस्री धर्म की बहुत-सी बातें यहूदियों ने अपना ली थीं। हज़रत मूसा (अलैहि॰) से पहले यहूदी कितने ही देवताओं को पूजते थे। एकेश्वरवाद के आदेश के बाद सभी देवताओं के चिह्न मिटा दिए गए। लेकिन दो देवता के नाम से हम परिचित हैं, जिनको कनआन पर अधिकार प्राप्त करने के बाद अपनाया था। एक बाल (Baal) और दूसरा मोलेक (Molech)। ये वास्तव में स्थानीय बादशाहों की आत्माएँ थीं। बाल और मोलेक से अधिक प्राचीन इसराईली देवता इल-शद्दाई (EL-SHADDAI) था। जिसका अर्थ होता है, शक्तिशाली ख़ुदा। इसे आगे चलकर यहोवा (Lord) नाम दिया गया। बाइबल में है, "ख़ुदा ने मूसा से कहा, मैं यहोवा (Lord) हूँ, मैं सर्वशक्तिमान ईश्वर (अर्थात् इल-शद्दाई) के नाम से इबराहीम, इसहाक़ और याक़ूब को दर्शन देता था। लेकिन यहोवा के नाम से मैं उनपर प्रकट न हुआ।" (निर्गमन 6:2-3) इससे स्पष्ट हुआ कि वे यहोवा नाम से अपरिचित थे।

यहूदियों की यहूवाह-पूजा को अपूर्ण एकेश्वरवाद कहा जा सकता है। इसे पूर्ण एकेश्वरवाद नहीं कहेंगे। क्योंकि यहूदियों में उसकी हैसियत केवल क़ौमी देवता की थी। इसराईली धारणा के अनुसार यहोवा को दूसरे पूज्यों की अपेक्षा अधिक शक्ति प्राप्त थी। विभिन्न अवस्थाओं में उसे नए-नए गुणों से विभूषित किया जाता रहा और यहोवा एक ईश्वर के दर्जे पर पदासीन हो गया।

यहूदियों की पूजा का प्राचीनतम तरीक़ा क़ुरबानी (बलि) थी। यह आभार व्यक्त करने का साधन था।

यहूदी हज़रत मूसा (अलैहि॰) के समय में भी और उनके बाद भी उनकी शिक्षाओं की अवहेलना करते रहे। हज़रत मूसा (अलैहि॰) की शिक्षाओं को ज़िन्दा करने के लिए बहुत-से पैग़म्बर आए, जिनकी शिक्षा एकेश्वरवाद और नैतिकतमा पर आधारित थी।

पुस्तकें

यहूदियों की पवित्र पुस्तक 'पुराने नियम की पुस्तक' (Old Testament) है। इनकी हैसियत इतिहास जैसी है। बुख़्ते-नसर की दासता के पश्चात् किताबों या तौरात का संकलन करने की ज़रूरत महसूस की गई। अज़रा ने इस काम को पूरा किया। ये किताबें कई बार आक्रमणकारियों के द्वारा नष्ट हुईं और बार-बार इन्हें एकत्र किया गया। जब यूनानियों ने अस्कन्दरिया में क़ैद किया उसके बाद तौरात यूनानी भाषा में संकलित की गई।

तौरात की किताबों के अतिरिक्त एक और किताब यहूदियों में पवित्र मानी जाती है। उसे तलमूद कहते हैं। उसमें हज़रत हारून (अलैहि॰) और उनकी सन्तान के कथन संकलित किए गए हैं। इसकी टीका और व्याख्या में जमरा (Gemara) नामी भाग उसमें सम्मिलित कर दिया गया।

तलमूद दो हैं। एक फ़लस्तीनी (Palestinian Talmud or Talmud Yerushalimi) और दूसरी बाबिली (Babylonian Talmud or Talmud Bavli)। यहूदियों में एक समुदाय पैदा हुआ जो करेम (Karaim) कहलाया। यह मौखिक कथनों को नहीं मानता जो तलमूद का आधार हैं। यह समुदाय लोकप्रिय हुआ। इसके लोग एकेश्वरवाद में विश्वास रखते हैं और हिसाब के दिन को स्वीकार करते हैं कि जब क़ियामत के दिन लोगों के कर्मों का हिसाब होगा तब लोगों को उनके कर्मों के अनुसार उन्हें बदला मिलेगा। हज़रत ईसा (अलैहि॰) के प्रति शत्रुता की भावना उनमें नहीं पाई जाती। वे मानते हैं कि हज़रत ईसा (अलैहि॰) हज़रत मूसा (अलैहि॰) की शरीअत (धर्म-विधान) को ही ज़िन्दा करने आए थे।

दूसरा समुदाय समारिया (Samaritans) है। आज इसके लोगों की संख्या

बहुत कम है। इस समुदाय के लोग एक मुक्तिदाता की प्रतीक्षा में हैं जिसके मुक़ाबले सभी क़ौमें पराजित होंगी।

क़ानून

यहूदी धर्म देवताओं से मुक्त है। इसके स्थान पर नैतिक और सामाजिक क़ानूनों पर ज़ोर दिया गया है। मनुष्य ईश्वर की कृति है। उसका परम कर्तव्य है कि ईश्वर के आदेशों का पालन करे। शान्ति की स्थापना के लिए क़ानून ज़रूरी है। क़त्ल और हत्या के अपराध में क़ातिल को क़त्ल किया जाएगा। आँख के बदले आँख, दाँत के बदले दाँत और हाथ के बदले हाथ आदि का क़ानून जारी था। ब्याज को अवैध ठहराया गया किन्तु यह निषेध केवल यहूदियों तक सीमित था।

ईसाई धर्म

ईसाई धर्म पैग़म्बर हज़रत ईसा (अलैहि॰) से संबद्ध माना जाता है। ईसाई का इबरानी (हेबरू) शब्द यसअ है। इसका अर्थ होता है मुक्तिदाता। यह शब्द यूनानी, लैटिन और अंग्रेज़ी में जीसस (Jesus) बन गया। हज़रत ईसा के गांव का नाम नासिरा था जो प्रान्त गेलिलियो (Galileo) में स्थित था।

हज़रत ईसा (अलैहि॰) को पैग़म्बरी मिली, किन्तु उनकी हँसी उड़ाई गई। गिली झील के तट कैपर (Capernum) के दो भाई उनपर ईमान ले आए। इस गाँव के अधिकतर लोग उनके श्रद्धालु हो गए। यहाँ एक पहाड़ी पर से एक बड़े समूह को उन्होंने सम्बोधित किया, यह अभिभाषण पहाड़ी के भाषण (Sermon of the mount) के नाम से प्रसिद्ध है।

उनके बाद उनके शागिर्दों (हवारियों) ने ईसाई धर्म को व्यवस्थित किया और इसके प्रचार-प्रसार की ओर उन्मुख हुए। ईसा (अलैहि॰) के शागिर्दों में से सहारस रूमी चर्च का पादरी था। पापाइयत का आरम्भ इसी के द्वारा हुआ।

पॉल या शाउल (Shaul) को ईसाई धर्म के इतिहास में बड़ा स्थान प्राप्त था। वास्तव में यह यहूदी था। इसका नाम (हिब्रू बाइबल में) सॉल (Saul) था। इसने ईसा (अलैहि॰) के अनुयायियों को यातना देने में बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया था। किन्तु तत्पश्चात् ईसाई धर्म के प्रचार में उत्साहपूर्वक प्रयत्नशील दिखाई देता है। उसने जगह-जगह गिरजा घरों का निर्माण किया।

ईसाइयत की शिक्षाओं में मौलिक शिक्षा यह है कि मनुष्य जन्मजात गुनहगार है। वह हज़रत आदम के गुनाह का उल्लेख करता है। मनुष्य क्योंकि आदम की संतान है इसलिए अनिवार्यतः वह गुनहगार है। ईश्वर अपने बेटे यसूअ के द्वारा इनसानों को गुनाहों से मुक्त कर सकता है, यदि

वे ईसाई धर्म स्वीकार कर लें। मनुष्य के गुनाह का कफ़्फ़ारा या प्रायश्चित (Atonement) हज़रत मसीह बन जाते हैं।

शागिर्दों में यूहन्ना (John) को भी महत्व दिया जाता है। यूहन्ना के अनुयायियों का क्षेत्र विस्तृत रहा है।

ईसाइयों का पवित्र ग्रंथ बाइबल है। वास्तव में यह कई पुस्तकों का संग्रह है। यह दो भागों में है। पहला भाग पुराना नियम (Old Testament) और दूसरा भाग नया नियम (NewTestament) कहलाता है। बाइबल का संकलन बाद में हज़रत ईसा के हवारियों ने या ऐसे लोगों ने किया जिन्होंने हवारियों से वृतांत और कथन सुने थे, जो कि (नया) नियम की तीसरी पुस्तक में हैं। पुस्तक मरकुस सबसे पुरानी है। यह सन् 65 से 70 ई० के मध्य लिखी गई। इसकी अन्तिम 12 आयतें मरकुस की नहीं है। बल्कि इनको दूसरी शताब्दी ई० में सम्मिलित किया गया। इन आयतों में हज़रत ईसा (अलैहि०) के जीवित होने और आसमान पर जाने का उल्लेख हुआ है।

नया नियम की पहली पुस्तक मत्ती (Mattiu) के संकलनकर्ता मत्ती हैं। यह पुस्तक अनुमान है कि 80 और 100 ई० के मध्य काल में लिखी गई है। यद्यपि इसके लिखे जाने का समय 61 ई० और 65 ई० के मध्य का समय भी कहा जाता है। यदि इसे मान लिया जाए, तो यह प्राचीनतम बाइबल के नए नियम की पुस्तक मानी जाएगी।

बाइबल की किताब लूक़ा का लेखक हज़रत मसीह (अलैहि०) का शागिर्द युहन्ना बताया जाता है। लेकिन शोध (Research) से पता चलता है कि इसका संकलन करनेवाला यूहन्ना कोई और ही व्यक्ति है जो एशियाए-कोचक का रहनेवाला था।

पुस्तक युहन्ना में लम्बे-लम्बे अभिभाषण पाए जाते हैं, जिसका विषय आसमानी बादशाहत (Kingdom of God) की स्थापना और हज़रत मसीह (अलैहि०) का व्यक्तित्व है। यह यूनानी दर्शन से बहुत प्रभावित दिखाई देता है। फ़ाइलो (Philo) और इस्कन्दरिया के नवअफ़लातूनी दार्शनिकों के विचार की मिलावट बहुत पाई जाती है।

ईसाई मिशनरी के लोग नए नियम की पुस्तकों को ईश्वरीय वाणी बताते हैं। लेकिन स्वयं ईसाई विद्वानों ने कहा है कि ये पुस्तकें हज़रत ईसा (अलैहि॰) की शिक्षाओं से अधिक सेंट पॉल के विचार को प्रस्तुत करती हैं।

नेका की सभा में त्रिवाद को मान्यता दी गई और इसे मौलिक सिद्धान्त घोषित किया गया। हज़रत मसीह (अलैहि॰) की शिक्षाओं को मूर्तिपूजकों की धारणाओं के रूप में ढाल दिया गया।

बाइबल की शिक्षाओं में विरोधाभास पाया जाता है। आरंभ में यहूदी और ईसा (अलैहि॰) के शागिर्दों की धारणाओं में अन्तर नहीं पाया जाता था। दोनों की धारणाएँ एक थीं। एक और समान धारणा, लेकिन विवाद यह था कि यहूदी आनेवाले मसीह की प्रतीक्षा कर रहे थे और ईसा (अलैहि॰) के शागिर्दों का यह कहना था कि मसीह आ चुका है। यहूदियों की कमज़ोरी के कारण ग़ैर-इसराईली शक्तिशाली हो गए। क्रिश्चन नाम विरोधियों ने दिया था।

स्वयं बाइबल के विभिन्न अंश बताते हैं कि हज़रत ईसा (अलैहि॰) एकेश्वरवादी थे। उन्होंने लोगों को बार-बार एक ईश्वर की बन्दगी की ओर आमंत्रित किया। यूहन्ना में है कि किसी सरदार ने मसीह (अलैहि॰) को ऐ नेक उस्ताद! कहकर संबोधित किया। उन्होंने कहा कि तू मुझे क्यों नेक कहता है। कोई नेक नहीं, किन्तु एक अर्थात् ईश्वर है। (18 : 18,19)

एक दूसरी जगह है कि हज़रत ईसा (अलैहि॰) ने कहा कि ईश्वर एक है और ईश्वर और मनुष्य के बीच का मार्ग भी एक है, अर्थात् यसू। लेकिन ईसाई धर्म ने जब बाहर क़दम निकाला, आसपास के देशों में उसका प्रचार हुआ, तो एकेश्वरवाद के स्थान पर त्रिवाद को अपना लिया। यह त्रिवाद बहुत-से धर्मों में पाया जाता है। लेकिन ईसाई धर्म ने प्राचीन त्रिवाद (Trinity) ओसरी, आसस और हीरस को अपनाया। अतः उन्होंने बाप, बेटा और पवित्र आत्मा की धारणा ग्रहण की। आरंभ में पवित्र आत्मा का स्थान हज़रत मरयम को दिया गया था।

जहाँ तक ईश्वर की बात है। यहूदियों में ईश्वर की धारणा मौजूद थी। वे ईश्वर को एक व्यक्तिगत नाम से पुकारते थे, जिसमें चार व्यंजन 'यहूवह्'

होते थे। 'यह्वह् के साथ-साथ यहूदी इसका एक छोटा रूप 'याह' भी उपयोग में लाते थे। एक दूसरा रूप 'याहू' भी था जो 'येशायाहू' जैसे नाम में प्रयुक्त होता था। बाइबल में ईश्वर के लिए 'यहोवा' शब्द भी प्रचुरता से प्रयुक्त हुआ है, किन्तु शोध करनेवाले कुछ विद्वानों का मत है कि यहूदियों ने 'यहोवा' शब्द का प्रयोग कभी नहीं किया। इस शब्द की उत्पत्ति 'मेरे प्रभु' (इब॰ अदोनाई) के स्वरों तथा 'यह्वह्' के सम्मिश्रण से हुई थी।

ईसाई धर्म के तीन मौलिक आधार हैं। 'ईश्वर का पुत्र' की धारणा बाद की उत्पत्ति है कि मसीह ईश्वर के पुत्र हैं। मसीह (अलैहि॰) ने ईश्वर को पिता कहा तो यह केवल प्रेम प्रकट करने के लिए कहा था। इसका अर्थ कुछ और न था। ईश-ज्ञान में जो चीज़ होती है वह उसके आदेश और इच्छा से ज़ाहिरी रूप धारण कर लेती है। जगत् की अभिव्यक्ति ईश्वर का ज्ञान के अन्तर्गत उसकी इच्छा और आदेश है।

ईश्वर और उसके पुत्र के अतिरिक्त ईसाई धर्म की तीसरी मौलिक धारणा 'पवित्र आत्मा' है। हज़रत मरयम के गर्भवती होने का कारण बाइबल में 'पवित्र आत्मा' को बताया गया है। पवित्र आत्मा की कल्पना अश्शोर देवता से संबद्ध है।

स्वीडन के शहर नेका (Nacka) की सभा में त्रिवाद को धार्मिक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया गया। आगे चलकर हज़रत मरयम को ख़ुदावन्द की माता का दर्जा दिया। और मरयम को पूज्य घोषित किया।

ईसाई धर्म की एक मौलिक शिक्षा आसमानी बादशाहत (Kingdom of God) में प्रवेश करने की शिक्षा है। जिसमें शैतान और गुनाह (Sin) को दबा दिया जाए। मसीह इस ईश्वरीय राज्य की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं। जो मुक्तिदाता के रूप में भेजे गए ताकि लोग कष्टों से छुटकारा पाएँ और ईश्वरीय संगति की दौलत से सम्पन्न हों। ईश्वर का पुत्र जो गुनाहों से मुक्त था मनुष्यों को गुनाहों के दंड से बचाने के लिए सूली पर चढ़ गया, ताकि मनुष्यों के गुनाहों का प्रायश्चित हो।

ईसाई धर्म में नैतिकता पर विशेष बल दिया गया है। बाइबल की पुस्तक लूक़ा में है—

"तू प्रभु अपने परमेश्वर से अपने सारे मन, अपने सारे प्राण और अपनी सम्पूर्ण शक्ति और अपनी सारी बुद्धि से प्रेम रख और अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख।" (लूक़ा 10 : 27)

लूक़ा में यह भी है—

"तुम सुननेवालों से कहता हूँ कि अपने शत्रुओं से प्रेम रखो। जो तुमसे बैर करें उनका भला करो। जो तुम्हें श्राप दें उनको आशीर्वाद दो। जो तुम्हारा अपमान करें उनके लिए प्रार्थना करो। जो तेरे एक गाल पर थप्पड़ मारे उसकी ओर दूसरा गाल भी फेर दो।"

(बाइबल, लूक़ा 6 : 27 से 29)

शागिर्दों को सम्बोधित करते हुए कहा—

"मैं तुमसे जो मेरे मित्र हो कहता हूँ कि जो शरीर को घात करते हैं, परन्तु उसके पीछे और कुछ नहीं कर सकते, उनसे मत डरो। मैं तुम्हें चिताता हूँ कि तुम्हें किससे डरना चाहिए, घात करने के बाद जिसको नरक में डालने का अधिकार है उसी से डरो।"

(बाइबल, लूक़ा 12 : 4, 5)

शागिर्दों ने मात्र मानव-प्रेम को अपनी शिक्षाओं का आधार बनाया। अतः उनका ध्यान आत्मिक मुक्ति से आगे न जा सका। सामाजिक समस्याओं की उन्होंने उपेक्षा कर दी। आत्मा की मुक्ति में अतिशयोक्ति से इतना काम लिया कि रहबानियत अर्थात् संन्यास और संसार-त्याग को धर्म का अनिवार्य अंग ठहरा लिया। हुकूमत और राजनीति आदि से सम्बन्ध न रखा। परिणाम यह हुआ कि लौकिक शासन सत्ता की बागडोर एकाधिपत्य (Monopoly) में चली गई।

पहला सम्राट जिसने ईसाई धर्म को स्वीकार किया वह कान्स्टण्टैन (272 ई॰-337 ई॰) है। उसने ईसाई धर्म को सरकारी धर्म घोषित कर दिया। प्रजा को ईसाई धर्म स्वीकार करने पर विवश किया। नेकिया में इसने एक कौंसिल बुलाई, जहाँ बाइलब की पुस्तकों के संकलन का कार्य किया गया। उसके देहान्त के पश्चात् चर्च की पूर्ण प्रधानता शासन में स्वीकृति पा गई।

रूमी हुकूमत पवित्र (Holy) हो गई। उस समय चर्च (Church) का प्रबंधन कार्य पाँच फ़ादरों की निगरानी में होने लगा, जिनके अन्तर्गत बहुत-से पादरी काम करते थे। 13वीं शताब्दी से लेकर 15वीं शताब्दी तक कलीसा (Church) का अत्याचार जन सामान्य पर बहुत आम हो गया था।

इस्लाम

हमने ऊपर प्रसिद्ध धर्मों का अवलोकन किया। तर्कसंगत और जीवन को सहज, सुन्दर और मंगलमय बनाने में वे असफल दिखाई देते हैं। साधारणतया मानव का सम्पूर्ण जीवन उनका विषय नहीं दिखाई देता। उनका सारा ज़ोर जीवन के किसी एक ही पक्ष पर प्रतीत होता है। जीवन के अलौकिक पहलू का हमारे सम्पूर्ण जीवन से क्या सम्बन्ध है, इस सिलसिले में वे हमारा मार्गदर्शन नहीं करते।

इसके अतिरिक्त वे प्रमाणिक धर्म नहीं। उनकी प्रमाणिकता अत्यन्त संदिग्ध है। न तो उनके धर्म-ग्रन्थ प्रमाणिक हैं और न उनकी मौलिक शिक्षाएँ बुद्धिसंगत मालूम होती हैं। उनमें विरोधाभास भी पाया जाता है। उनका ज्ञान-स्रोत अटकल, अनुमान और चिन्तन के अतिरिक्त और अधिक कुछ नहीं।

बाइबल का हाल हम देख चुके हैं। बाइबल की पुस्तकें हज़रत ईसा (अलैहि॰) के बहुत बाद लिखी गई हैं। तौरात कितनी बार लुप्त हुई है और उसे स्मरण के सहारे कई बार पुस्तक का रूप दिया गया है, वह भी वृत्तांत और इतिहास के रूप में। बाइबल अपनी मूल भाषा में उपलब्ध नहीं, जो कुछ है वह मात्र अनुवाद है।

इसमें मतभेद है कि वेद ईश्वरीय वाणी हैं या ऋषियों की अपनी रचना है। फिर आज हिन्दू धर्म का आधार वेदों के स्थान पर पुराण आदि हैं, जिसकी हैसियत मात्र दास्तानों और दंत कथा (Legend) की है।

धर्म की कुछ बातें ऐसी हैं कि जिनका सम्बन्ध सामान्य ज्ञान (Common Sense) से है। जिनको एक नास्तिक भी स्वीकार करता है। यद्यपि गहराई और अर्थपूर्णता उनमें धर्म के द्वारा ही आती है। उदाहरणार्थ सच बोलो, झूठ न बोलो। किसी को धोखा न दो, व्यभिचार न करो और किसी प्राणी पर

अत्याचार न करो आदि। इनसे धर्म की विशेषता का पता नहीं चलता।

जैसा कि हम कह चुके हैं, धर्म तो वह है जो हमारे संपूर्ण व्यक्तित्व का परिचायक हो। जिसका ज्ञान-स्रोत पूर्ण और असंदिग्घ हो, और जो प्रमाणिक रूप से हम तक पहुँचा हो। हमें किसी नगर की यात्रा करनी होती है, तो हम अटकल से किसी गाड़ी में नहीं बैठ जाते, बल्कि पता करके उसी ट्रेन में सवार होते हैं जो अभीष्ट नगर को जा रही हो। क्या इस लघु यात्रा से भी कम महत्त्व जीवन-यात्रा का है कि हम इस सम्बन्ध में अटकल और अप्रमाणिक बातों पर भरोसा कर लेते हैं। यह जीवन की अवमानना ही नहीं बल्कि उसका निरादर और जघन्य अपराध है और स्वयं अपने-आपसे वैर है।

जब हम इस्लाम का अध्ययन करते हैं, तो हमें अपने सारे ही प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर मिल जाता है। यहाँ हम बहुत विस्तार में न जाते हुए इस्लाम की कुछ मौलिक बातों का उल्लेख करना चाहेंगे।

इस्लाम की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह एक प्रामाणिक धर्म है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने जो धर्म-ग्रन्थ ईश्वर की ओर से प्रस्तुत किया वह अक्षरशः सुरक्षित और प्रामाणिक है।[1] क़ुरआन के अतिरिक्त पैग़म्बर (सल्ल०) के अपने कथन भी पूर्ण रूप से विशुद्धतः हम तक पहुँचे हैं। पैग़म्बर (सल्ल०) की ओर से पैग़म्बर (सल्ल०) के जिस किसी सहचर (सहाबी) ने पैग़म्बर का कोई कथन या पैग़म्बर का कोई आदेश आदि उद्धृत किया है, या पैग़म्बर के सहचर के माध्यम से पैग़म्बर का कोई कथन (हदीस), व्यवहार और आदेश आदि का वर्णन किया है, वह कौन था, उसकी स्मरण-शक्ति कैसी थी आदि सब कुछ लिखा गया और सम्पूर्ण विवरण सुरक्षित है। नबी (सल्ल०) अर्थात् हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) से लेकर आज तक के रावियों (Reporters) की जो शृंखला (Chain) पाई जाती है उसे सविस्तार सुरक्षित रखा गया है। यदि किसी हदीस के रावियों की शृंखला की कोई कड़ी लुप्त है, तो वह हदीस संदिग्ध मानी गई है। अर्थात् उसपर पूरा भरोसा

1. क़ुरआन में भी कहा गया है कि "यह अनुस्मरण (क़ुरआन) हमने (ईश्वर ने) अवतरित किया है और हम स्वयं इसके रक्षक हैं।" (क़ुरआन, सूरा-15 हिज्र, आयत-9)

हदीस-ज्ञाताओं ने नहीं किया। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के कथनों आदि के विषय में जाँच-पड़ताल के लिए एक शास्त्र 'अस्माउर्रिजाल' का आविष्कार किया गया जिसका नाम हदीस शास्त्र (हदीस का इल्म) है। उसके वैज्ञानिक नियम निर्धारित किए गए। इसकी मिसाल दुनिया की किसी क़ौम में नहीं पाई जाती।

स्वयं हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) का जीवन ऐतिहासिक है। प्रागैतिहासिक (Prehistorical) नहीं। अर्थात् पैग़म्बर का जीवन वृत्तांत पूर्ण रूप से सरक्षित और प्रामाणिक है, जो आप (सल्ल॰) की शिक्षाओं और इस्लाम धर्म के समझने में सहायक है।

इस्लाम का मूल ज्ञान-स्रोत ईश्वर की ओर से अवतरित ग्रन्थ पवित्र क़ुरआन है। ईश्वर क्योंकि सर्वज्ञ है, अतः उसकी ओर से अवतरित ज्ञान पर पूर्णरूप से विश्वास किया जा सकता है।

इस्लाम की एक विशेषता यह है कि उसके अनुसार इस्लाम (अर्थात् ईश्वर के प्रति समर्पण और उसका आज्ञापालन) सभी पैग़म्बरों का धर्म रहा है। अतः यह धर्म नवीनतम ही नहीं प्राचीनतम भी है। इस्लाम की दृष्टि में मनुष्य के लिए विभिन्न और कई धर्म नहीं हो सकते। एक ही सत्य धर्म सम्पूर्ण मानव-जाति के लिए मान्य है, जिसकी शिक्षा ईश्वर[1] ने अपने पैग़म्बरों (सन्देशवाहकों) के माध्यम से दी है। मानव की प्रकृति और स्वभाव समान है। सबकी इच्छाएँ और मनोकामनाएँ एक हैं। अतः उसके जीवन का मूल उद्देश्य और लक्ष्य भी एक ही होगा। जीवन के लक्ष्य और उद्देश्य का निर्धारण धर्म द्वारा ही होता है। अतः मानव-जाति का वास्तविक धर्म भी एक ही होगा, कई नहीं।

इस्लाम की धारणा यह है कि ईश्वर है और वह एक है, कई नहीं। ईश्वर

---

1. क़ुरआन में है, "धर्म तो अल्लाह की दृष्टि में इस्लाम ही है। जिन्हें किताब दी गई थी (यहूदी और ईसाई) उन्होंने इसके बाद विभेद किया कि ज्ञान उनके पास आ चुका था।"
(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-19)

के आदेशों का पालन ही धर्म है।[1] ईश्वर के आदेशों, मनुष्यों और जगत के प्रति उसकी योजना और उसकी ओर से निर्धारित जीवनशैली को स्वीकार करना, यह सभी कुछ धर्म के अन्तर्गत आता है। किसी चीज़ को भी धर्म से अलग करके देखा नहीं जा सकता। जीवन और जगत के सम्बन्ध में अधूरा और अपूर्ण ज्ञान वह ज्ञान नहीं जो हमें अपेक्षित है। ईश्वर के आदेशों की अवहेलना और उसकी योजना की उपेक्षा के बाद तथाकथित आध्यात्म का जिसको बहुत महत्त्व दिया जाता है, क्या मूल्य रह जाता है।

अन्त में हम इस्लाम की विशिष्ट शिक्षाओं और गुणों का वर्णन एक साथ करना चाहेंगे–

1. इस्लाम की शिक्षा एकेश्वरवाद (तौहीद) की है। जगत का परम शासक ईश्वर ही है और उसी के द्वारा जगत का संचालन भी हो रहा है। जगत और जगत में जो कुछ भी है, ईश्वर की कृति है।[2]

2. इस्लाम में ज्ञान का स्रोत ईश्वर ही है। उसने अपने पैग़म्बरों के माध्यम से जो ज्ञान प्रदान किया वही सत्य है। वह अपनी वाणी (Revelation) के द्वारा आरंभ से ही हमारा मार्ग-दर्शन करता है। सारे पैग़म्बरों की शिक्षा जिन्हें नबी और रसूल भी कहते हैं एक ही रही है। सबका धर्म ईश-आज्ञापालन का था। इसी लिए किसी भी पैग़म्बर का इनकार सभी पैग़म्बरों का इनकार है।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) पैग़म्बरों के सिलसिले की अंतिम कड़ी हैं। आप (सल्ल॰) के बाद कोई पैग़म्बर आनेवाला नहीं है।[3] अलबत्ता प्रत्येक शताब्दी के अन्त में ऐसे व्यक्ति पैदा होते रहेंगे जो धर्म पर पड़ी अज्ञान की धूल आदि

---

1. क़ुरआन में है, "सत्ता और अधिकार तो बस अल्लाह का है। उसने आदेश दिया है कि उसके सिवा किसी की बन्दगी न करो। यही सीधा, सच्चा दीन (धर्म) है। किन्तु अधिकतर लोग नहीं जानते।" (क़ुरआन, सूरा-12 यूसुफ़, आयत-40)
2. क़ुरआन में है, "और अल्लाह ही के लिए है बादशाही, आकाशों और धरती की और जो कुछ उनके बीच है उसकी भी और जाना भी उसी की ओर है।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-18)
3. देखें, क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-40

को दूर करके धर्म के वास्तविक रूप की रक्षा करते रहेंगे और धर्म में प्राण डालते रहेंगे।[1]

3. अन्तिम नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के अनुयायी सब-के-सब दुनिया से मिटा दिए जाएँ ऐसा कभी न होगा। और न यह होगा कि आप (सल्ल॰) के अनुयायी या आप (सल्ल॰) के माननेवाले समुदाय शेष तो रहें, किन्तु आप (सल्ल॰) के अनुयायी सब-के-सब सत्य-धर्म को त्याग दें और गुमराहियों में ग्रस्त हो जाएँ जैसा कि हज़रत मूसा (अलैहि॰) और ईसा (अलैहि॰) के नाम लेनेवाले तो पाए जाते हैं, किन्तु वे मूसा (अलैहि॰) और ईसा (अलैहि॰) के वास्तविक धर्म से बहुत दूर जा पड़े हैं।[2]

4. ईश्वर ने यह वचन दिया है कि वह अपनी किताब की स्वयं रक्षा करेगा। यह किताब न तो लुप्त हो सकती है और न इसमें कोई परिवर्तन हो सकता है। शताब्दियाँ गुज़र गईं, ईश्वर अपना वादा पूरा करता आ रहा है। क़ुरआन अक्षरशः आज भी सुरक्षित है और प्रामाणिक रूप में हमारे हाथों में है।[3]

5. सत्य जहाँ कहीं और जिस रूप में है, क़ुरआन उसकी पुष्टि करता है।[4]

6. इस्लाम की धारणा यह है कि मानव को धरती पर स्थायी रूप से नहीं बसाया गया है। वह वास्तव में अमरलोक का वासी है। वह मृत्युलोक का वासी नहीं है। परलोक या अमरलोक पूर्णलोक है, वहाँ किसी प्रकार की कमी

1. यह सूचना नबी (सल्ल॰) ने स्वयं दी है।
2. देखें, क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयतें-70 से 79, 99; सूरा-4 निसा, आयत-171 सूरा-5 माइदा, आयतें-15, 68, 77
   बाइबल (तौरात, इंजील) में हज़रत मुहम्मद (सल्ल) के नबी अथवा पैग़म्बर के रूप में आगमन की सूचना दी गई थी, किन्तु यहूदी हों या ईसाई इन्होंने आप (सल्ल॰) के नबी होने का इनकार किया। इनके थोड़े से लोग थे जो आप (सल्ल॰) पर ईमान ले आए और आप (सल्ल॰) के नबी होने को स्वीकार किया और आप (सल्ल॰) के अनुयायी हुए।
3. देखें, क़ुरआन, सूरा-15 हिज्र आयत-9
4. देखें, क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयतें-89, 101

न होगी। वहाँ मृत्यु नहीं। वह जन्नत या वह स्वर्ग है जहाँ सारी कामनाएँ पूरी होती रहेंगी। वह लोक आनन्द का है।[1] वहाँ अपने प्रेम-पात्र प्रभु के दर्शन[2] भी सम्भव होंगे। वहाँ न कोई भय होगा और न कोई दुख और शोक या संताप होगा। ऐसे सुन्दरतम लोक के अधिकारी ईश्वर के प्रिय जन और वे लोग होंगे जो दुनिया में उसके दिखाए गए मार्ग पर चले होंगे।

वर्तमान जीवन तो इसलिए प्रदान किया गया है कि हम इस जीवन में अपने आचार-विचार और चरित्र से यह सिद्ध कर दें कि हम उस सुन्दरतम परमलोक के योग्य हैं। यह योग्यता कैसे प्राप्त की जा सकती है। इस्लाम की सारी शिक्षाएँ वास्तव में इसी पर आधारित हैं कि हम परमलोक के अधिकारी हो सकें। यद्यपि इस्लाम की शिक्षाओं के अनुपालन से वर्तमान जीवन की समस्याएँ भी हल होती हैं। वर्तमान जीवन के लिए ये शिक्षाएँ किसी वरदान से कम नहीं, शर्त यह है कि उनको शुद्ध हृदय से अपनाया जाएं।

7. इस्लाम की एक मौलिक धारणा यह है कि सम्पूर्ण मानव-जाति एक ही समुदाय है।[3] सारे मनुष्य परस्पर भाई-भाई हैं। उनमें सौहार्द होना चाहिए। मनुष्य विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त होकर न रहें। वे आपस में एक-दूसरे के शत्रु न बनें। यही ईश्वर को प्रिय है। सार्वभौमिक मित्रता और भाई-चारा (Universal brotherhood) उसकी मौलिक शिक्षा है।

8. इस्लाम की दृष्टि में मानव सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। ईश्वर की ओर से उसे महानता और गरिमा प्रदान की गई है।[4] सूर्य, चन्द्र और जगत् की सारी चीज़ें

1. जन्नत की आनन्ददायक चीज़ों का क़ुरआन में जगह-जगह उल्लेख किया हुआ है। उदाहरणार्थ देखें, क़ुरआन, सूरा-या.सीन.36, आयतें-55 से 58। इन आयतों में आया है कि जन्नतवाले किसी-न-किसी काम में व्यस्त आनन्द ले रहे होंगे और उनके लिए वह सब कुछ होगा जिसकी वे माँग करें।

2. देखें, क़ुरआन, सूरा-क़ियामह-75, आयतें-22, 23

3. देखें, क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा आयत-213; सूरा-10 यूनुस, आयत-19 इन आयतों में कहा गया हैं कि "सारे मनुष्य एक ही समुदाय हैं।" वे स्वयं अलग-अलग हो रहे हैं। यह बात कितनी क्रांतिकारी है, जो क़ुरआन में बयान हुई है और आज से शताब्दियों पहले बयान हुई।

4. देखें, क़ुरआन, सूरा-17 बनी-इसराईल, आयत-70

उसकी सेवा में रत हैं। मनुष्य को ईश-गुणों का दर्पण बनाया गया है। इस दर्पण में ईश-गुण प्रतिबिम्बित हों। ईश्वर पवित्र है, तो मनुष्य में पवित्रता पाई जाए। ईश्वर दानशील है, तो मनुष्य को भी कृपण नहीं बल्कि दानशील होना चाहिए। मनुष्य अपनी गरिमा और महानता (Greatness) की रक्षा ईश्वर के आदेशों और उसके गुणों के अनुपालन के द्वारा ही कर सकता है। मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपनी श्रेष्ठता को समझे और उसे किसी प्रकार की क्षति न पहुँचने दे। मनुष्य के लिए यह अनिवार्य है कि वह ईश्वर का आभारी और कृतज्ञ हो।[1] यही वास्तविक बन्दगी और भक्ति है।

9. इस्लाम की एक मौलिक धारणा यह है कि मानव-जाति का एक ही धर्म सम्भव है और वह है ईश्वर के प्रति समर्पण की भावना और उसके आदेशों का अनुपालन। वह ईश्वर का कृतज्ञ और आज्ञाकारी बनकर जीवन व्यतीत करे। इसके विपरीत वह अपने जीवन में जो भी नीति अपनाएगा उसे पथभ्रष्टता ही कहा जाएगा।

10. फिर इस्लाम कोई शुष्क धर्म कदापि नहीं। जो प्रभु धरती को पुष्पित करता है। तारों से आकाश को सजाता है, मनुष्य को रहने के लिए धरती को सुन्दर और उसके अनुकूल बनाता है, फिर यह कैसे सम्भव है कि स्वयं मनुष्य के जीवन में सुन्दरता और आनन्द का अभाव हो।[2]

इस्लाम की दृष्टि में मनुष्य का अपने ईश्वर से जो सम्बन्ध है, वह केवल क़ानूनी सम्बन्ध नहीं है, बल्कि वह अत्यन्त मधुर (Sweetest) सम्बन्ध है। ईश्वर मनुष्य को अपने प्रेम-पाश में लेना चाहता है। यह मानव के लिए अत्यन्त सुखद और गौरव की बात है।

11. फिर इस्लाम हमें सूचित करता है कि ईश्वर प्रेम से रिक्त नहीं है।

---

1. देखें, क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-185; सूरा-16 नहल, आयत-78। क़ुरआन से मालूम होता है कि ईमान और इस्लाम का आधार कृतज्ञता का भाव है। क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-147
2. देखें, क़ुरआन, सूरा-18 कह्फ़, आयत-7

ईश्वर स्वयं प्रेम करनेवाला है।[1] हम भी अपने प्रेमी से प्रेम करें। प्रेम का अतिरेक ही पूजा है। ईश्वर का ज्ञान और उसकी प्रतीति से स्वतः जो भाव पैदा होता है वह प्रेम का अतिरेक अर्थात् पूजा (Worship) है।

प्रेमी अपने प्रेम-पात्र को अप्रसन्न देखना नहीं चाहेगा। यह स्वाभाविक है। उसकी प्रसन्नता हमारे जीवन की सबसे बड़ी निधि है। उसकी इच्छाओं का अनुसरण ही जीवन है। इस्लाम का मार्ग ज्ञान का ही नहीं, प्रेम-अनुराग का मार्ग पहले है।

12. इस्लाम हमें सतर्क करता है कि जीवन का जो अवसर हमें प्राप्त है, यदि हम इसमें चूक गए और ईश्वर की योजना के अनुकूल अपने को न बनाया और उसके आदेशों की अवहेलना ही हमारा जीवन हुआ, तो संताप, दुख और यातना के सिवा हमारे हिस्से में और कुछ न आएगा। वर्तमान जीवन तो हमारी परीक्षा के लिए है कि हम ईश्वर के प्रति समर्पित होते हैं या नहीं। हम अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हैं या नहीं। हम सत्यधर्म के अनुयायी बनते हैं या उसके विरोध में जीवन व्यतीत करते हैं। हम ईश्वर का आभार स्वीकार करते हैं या उसके बेवफ़ा और अवज्ञाकारी बनकर रहते हैं। हम एक ईश्वर को अपना प्रिय पूज्य और प्रभु मानते हैं या उसके सिवा दूसरों को भी अपना पूज्य और आराध्य स्वीकार करते हैं।[2]

यदि हमने अपने-आपको एक ईश्वर के प्रति समर्पित न किया बल्कि उसका इनकार किया या उसके साथ दूसरों को भी ईश्वरत्व का स्थान दिया, तो यह ऐसा अपराध होगा जो क्षमा नहीं हो सकता।[3]

पुनर्जन्म की धारणा इस्लाम के विरुद्ध है। ईश्वर आज़माए हुए को बार-बार नहीं आज़माता। वर्तमान जीवन हमारे लिए पहला और अन्तिम

---

1. क़ुरआन में है, "वह बड़ा क्षमाशील, प्रेम करनेवाला है।"
(क़ुरआन, सूरा-85 बुरूज, आयत-14)
2. क़ुरआन में है, "निस्सन्देह बहुदेववाद घोर अन्याय है।"
(क़ुरआन, सूरा-31 लुक़मान, आयत-13)
3. देखें, क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयतें-48

अवसर है। यदि हम चूक गए और ग़ाफ़िल ही रहे, तो शुभ अवसर हमारे हाथ से निकल जाएगा और ईश्वर के प्रकोप के ही हम भागी होंगे।

13. इस्लाम बताता है कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) सारे संसार के मार्गदर्शक बनाकर भेजे गए हैं। किसी विशेष जाति या भूभाग के लिए ही उनका आगमन नहीं हुआ है। उनका दिखाया हुआ मार्ग सारे ही मानवों के लिए है। सम्पूर्ण जगत् के आप (सल्ल॰) मार्गदर्शक और मुक्तिदाता हैं।[1]

14. जो इस्लाम को स्वीकार नहीं करते उनके साथ हमारा व्यवहार कैसा होगा, इस सम्बन्ध में इस्लाम की शिक्षा यह है कि हम उदारता से काम लें और उनके प्रति अपने नैतिक कर्तव्यों को न भूलें। उनके साथ हमारा व्यवहार अच्छा हो। हमारा सम्बन्ध उनके साथ नैतिकता पर आधारित होना चाहिए। उनपर ज़ुल्म और ज़्यादती करने का हमें अधिकार कदापि नहीं। उन तक हम ईश्वर का सन्देश पहुँचाएँगे। लेकिन सत्य को वे स्वीकार करें इसके लिए किसी प्रकार की ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं की जा सकती।[2] उन्हें अपनी धारणाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करने का पूरा अधिकार प्राप्त होगा। उनका भी कर्तव्य होगा कि इस्लाम के अनुयायिओं पर ज़ुल्म और ज़्यादती न करें। ईश्वर के समक्ष हर एक का लेखा-जोखा या कर्म प्रस्तुत होगा। वह स्वयं सत्य के विरोधियों को उनकी कमाई का बदला देनेवाला है। सत्य के विरोधी उसकी पकड़ से बच नहीं सकते। बस उन्हें सावधान करना, इस्लाम के अनुयायियों का कर्तव्य होता है। ताकि वे कल यह न कह सकें कि जिनके पास सत्य का ज्ञान था उन्हें हमारी कोई चिन्ता न हुई। उन्होंने हमें अँधेरे से निकालने का कोई प्रयास नहीं किया। यदि वे किसी इस्लामी हुकूमत के अधीन हैं, तो हुकूमत की ओर से उनके अधिकारों का पूर्णरूप से आदर किया जाएगा।

---

1. क़ुरआन में है, "ऐ नबी! हमने तो तुम्हें सारे ही मानवों के लिए शुभ सूचना देनेवाला और सचेत करनेवाला बनाकर भेजा है।" (क़ुरआन, सूरा-34 नबा, आयत-28)
2. क़ुरआन में है, "धर्म के मामले में कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं।" (क़ुरआन, सूरा-2, आयत-256)

15. इस्लाम की शिक्षा एक पक्षीय कदापि नहीं है और न इस्लाम की शिक्षा अपूर्ण है। वह जीवन की छोटी-छोटी बातों से लेकर ब्रह्म-ज्ञान तक की हमें शिक्षा देता है। वह आध्यात्म भी है और नैतिक व्यवस्था भी। वह व्यक्तिगत जीवन से लेकर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक आदि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमारा मार्गदर्शन करता है।

16. इस्लाम एक आशावादी धर्म है। वह हमें किसी भी स्थिति में निराश नहीं करता। वह सम्पूर्ण मानवता के लिए शुभ समाचार है। वह हर प्रकार के सन्देहों से हमें मुक्त देखना चाहता है। वह चाहता है कि हमारा जीवन सन्देह और शंका पर नहीं, बल्कि पूर्ण विश्वास पर अवलंबित हो।

मृत्यु उसकी दृष्टि में उनके लिए उपहार है जो ईश्वर और परलोक में विश्वास रखते हैं। जो जानते हैं कि शाश्वत जीवन (Eternal life) ही वास्तविक जीवन है। मृत्यु शाश्वत जीवन की ओर बढ़ने का एक क़दम है। मृत्यु बहुत-से भौतिक आवरणों को हमारी निगाह से हटा देती है और हम सत्य (Ultimate Reality) को स्पष्ट रूप से अनुभव करने के योग्य हो जाते हैं।

शाश्वत जीवन की धारणा मौलिक धारणा है। इस्लाम हमारे लौकिक जीवन को उसी के अन्तर्गत देखने की शिक्षा देता है। उसे अपेक्षित है कि हम यह बात भली-भाँति समझ लें कि वास्तविक जीवन शाश्वत जीवन ही है। वर्तमान जीवन तो इसलिए मिला है कि हम अपने कर्मों और चरित्र से इस योग्य हो सकें कि हम परम-जीवन और परम-धाम के पात्र हो सकें।

सारांश यह है कि धर्म इस्लाम की दृष्टि में जीवन का पर्याय है। यह जीवन से भागना नहीं और न जीवन से घृणा करना है। काम हो या अर्थ या मोक्ष हो, प्रत्येक को धर्म में एक उचित स्थान प्राप्त है। यह धर्म प्रत्यक्ष और परोक्ष (Unseen) दोनों को अपनी परिधि में लिए हुए है। इसलिए यह ईश्वर प्रदत्त ही नहीं एक परिपूर्ण धर्म है।

●●